ध्यान दें:

13

अध्यास लक्षण विचार

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चार प्रकार के पुरुषार्थ होते हैं। प्रत्येक पुरुषार्थ के लाभोपाय शास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं। मनु आदि के द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र, कौटिल्यादि के द्वार प्रणीत अर्थशास्त्र तथा वात्स्यायन आदि के द्वारा प्रणीत कामशास्त्र संसार में प्रसिद्ध हैं तथा दर्शनों को मोक्षशास्त्र कहा गया है। भारतीयदर्शन आस्तिक तथा नास्तिक भेद के द्वारा दो प्रकार से विभाजित हैं। अर्थात् जो दर्शन वेद को प्रमाण रूप में मानते हैं वो आस्तिक दर्शन हैं, और वेद जो के प्रमाण को नहीं मानते हैं वे नास्तिक दर्शन हैं। चार्वाक, जैन तथा बौद्ध दर्शन नास्तिक दर्शन हैं, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा तथा उत्तरमीमांसा आस्तिक दर्शन कहे जाते है। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत वेद वाक्यों का विचार पूर्वमीमांसा दर्शन में होता है। ज्ञानकाण्ड के रूप मे उपनिषदों का विचार उत्तरमीमांसा दर्शन में होता है। उत्तर मीमांसा दर्शन का ही अपर नाम वेदान्त है। उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता तथा ब्रह्मसूत्र इन तीनों के आधार पर ही वेदान्तों का प्रपञ्च होता है। प्रस्थानत्रयी की बहुत प्रकार की व्याख्या के दर्शन से बहुत प्रकार के वेदान्त अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत भेद अभेद आदि का प्रादुर्भाव हुआ। इन सभी में आचार्य शंकर के द्वारा विरचित अद्वैतवेदान्त ही पूर्णरूप से विराजमान है।

ब्रह्मसत्य है जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है न की कोई ओर। इस प्रकार से सभी अद्वैतवेदान्त के प्रतिपाद्य विषयों का यह सार होता है। ब्रह्म के स्वरूप का भूत, भविष्य तथा वर्तमान में परिवर्तन नहीं होता है। इसलिए ब्रह्म सत्य कहलाता है। अत: शङ्कराचार्य तैत्तिरीय उपरनिषद् के भाष्य में कहते हैं की - यद्रूपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति तत् सत्यम्। अर्थात् जिस रूप में जो निश्चित हो चुका हो वह अपने स्वरूप से कभी व्यभिचरित नहीं होता हो वह सत्य कहलाता है। इस प्रकार से सत्य नित्य होता है। लेकिन अविद्यादि दिदोषशून्यत्व से ब्रह्मशुद्ध होता है अजड़ होने से बद्ध भी है, उसके बन्धन के असम्भव से वह मुक्त भी है तथा परमप्रेम के अस्वीकार होने से वह आनन्दस्वरूप भी है। जो जहाँ पर प्रतीत होता है, परवर्तिकाल में उत्पन्न यथार्थ ज्ञान के द्वारा उसका वही निषेध होता है तो वह मिथ्या कहलाता है। इसलिए यह अनुभूयमान जगत् उत्पन्न भी होता है तथा नष्ट भी होता है इसलिए यह सत् नहीं है। लेकिन खरगोश के सींग के समान भी असत् नहीं है क्योंकि जगत् की तो प्रतीति होती है। यहा जगत् सत् तथा असत् उभयात्मक भी नहीं है क्योंकि परस्पर विरुद्ध धर्म एकस्थान पर नहीं रह सकते हैं। इसलिए यह जगत् सत् तथा असत् दोनों के द्वारा अनिर्वचनीय है। ब्रह्म ही अपने में आरोपित माया के कार्य से अन्त: करण के द्वारा उपहित होकर जीव कहलाता है। जिस प्रकार से आकाश एक होता हुआ भी घट भेद से अलग अलग होता है उसी प्रकार वह ब्रह्म भी एक होता हुआ प्रत्येक शरीर में

ध्यान दें:

अलग-अलग रूप में विद्यमान है। अन्त: करण बहुत होते हैं इसलिए जीव भी बहुत हैं। उनमें से जो शास्त्राचार्यों के उपदेश के द्वारा शमदमादि के द्वारा संस्कृत मनस से श्रवण-मनन तथा निदिध्यासन के द्वारा जो अपने ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार करता है वह मुक्ति को प्राप्त होता है। मुक्ति अर्थात् आत्यन्तिकदु:खनिवृत्ति तथा स्वरूपानन्दप्राप्ति है। वह मुक्ति श्रवणादि के द्वारा ब्रह्मकार चित्तवृत्ति के उदय होने से तथा अज्ञान के नाश से सिद्ध होती है।

अद्वैत वेदान्त शास्त्र के अवबोध के लिए ब्रह्म मायादि ज्ञान के साथ अध्यासक ज्ञान भी बहुत ज्यादा आवश्यक होता है। अध्यास ज्ञान के बिना- निर्गुण ब्रह्म का किस प्रकार से जीवत्व होता है तथा जीव का किस प्रकार से कर्तृव भोक्तृत्व आदि बन्धन होते हैं, कैसे अध्यस्त बन्धनों की निवृत्ति होती है इत्यादि विषय नहीं जाने जा सकते हैं। अखिल जगत् के ब्रह्म में अध्यस्त्व होने से जगत् का मिथ्यात्व निश्चय करने के लिए अध्यास क्या होता है, क्या उसका कारण होता है। उस अध्यास के कौन से भेद होते हैं, कैसे सभी प्रकार के लौकिक तथा शास्त्रीयव्यवहारों की अध्यास पूर्वता है, तथा किस प्रकार से अध्यास की निवृत्त होती है ये सभी विषय जानना चाहिए। इस पाठ में हम उन विषयों का आलोचन करके अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से आप समर्थ होंगे;

- अद्वैतवेदान्त में अध्यास के आलोचन का क्या प्रयोजन है जानने में;
- अध्यासपद का व्युत्पत्तिगत अर्थ जानने में;
- अध्यास का लक्षण तथा अध्यास के लक्षण विचार में मतभेद को जानने में;
- अध्यास के भेद को जान पाने में;
- अध्यास सत्व में प्रमाण को जान पाने में;
- लौकिक तथा शास्त्रीय व्यवहारों का आध्यासिकत्व जानने में;

13.1) अध्यासप्रयोजन

अद्वैतवेदान्त में प्रतिपाद्यविषय तो जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य,मुक्ति तथा इस शास्त्र का प्रयोजन। जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य संसार में प्रसिद्ध है तथा उसके ज्ञान के बिना बुद्धिमानों की अद्वैतवेदान्त में प्रवृति नहीं हो सकती है। लेकिन संसार में ये अनुभव तो होता ही है की शरीर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि आदि के द्वारा अवच्छिन्न जीव शास्त्र प्रतिपादित नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावा वाले ब्रह्म से भिन्न होता है। जीव तथा ब्रह्म का यह भेद तात्विक है इसे सैकड़ों शास्त्र के द्वारा भी दूर नहीं किया जा सकता है। इसलिए जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य रूप विषय की सिद्ध के लिए सर्वप्रथम ब्रह्म ही अज्ञानकारण से जीव होता है इस प्रकार से ब्रह्म का जीवत्व, मिथ्या, अध्यासकार्य का प्रतिपादन करना चाहिए। अध्यास स्वरूप के ज्ञान के बिना जीव का अध्यास कार्यत्व बुद्धिगोचर न होता है इसलिए सबसे पहले अध्यास ही आलोचन का विषय होता है।

बन्धन की निवृत्ति से ही मोक्ष सम्भव होता है। जीव का अविद्यादिकृत बन्धन यदि परमार्थिक है तो किसी भी उपाय से उसकी निवृत्ति सम्भव नहीं है। बन्धन निवृत्ति के असम्भव होने पर मुक्ति की

ध्यान दें:

सिद्धि में वेदान्तशास्त्र विफल हो जाता है। क्योंकि वहाँ पर मुमुक्षुओं की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसलिए यहाँ पर कहा जाता है कि अविद्या के द्वारा किये गये कर्तृत्व भोक्तृत्वादि बन्धन पारमार्थिक होते हैं। यह बन्धन ब्रह्म में आरोपित होता है जीव का स्वरूप ज्ञान होने पर इनके मिथ्याभूत बन्धनों की निवृत्ति हो जाती है। जैसे रस्सी का स्वरूप ज्ञान होने पर मिथ्या भूत सर्प की निवृत्ति हो जाती है उसी प्रकार। छान्दोग्योपनिषद् में यह सुना जाता है की 'तरति शोकम् आत्मवित्।' आत्मवान् शोक को तर जाता है। इसलिए अद्वैतवेदान्त की प्रयोजनसिद्धि के लिए बन्धन मिथ्यात्व के तथा अध्यस्तत्व के प्रतिपादन के लिए अध्यारोप पर्याय अध्यास के लक्षण प्रमाण का ज्ञान हमेशा अपेक्षित है।

वेदान्त शास्त्रों में ब्रह्म विचार प्रस्तुत किया गया है। विचार के सन्दिग्ध सप्रयोजन तथा होने पर वह विषय में सम्भव होता है। निश्चित रूप से सभी का ही अहं इस विचार के उत्पन्न होने से ब्रह्म सन्दिग्ध नहीं होता है। आत्मा के यथा स्वरूपज्ञान के द्वारा संसार की निवृत्ति होती है। लोक प्रसिद्ध आत्मानुभव के अलावा अन्य आत्मा का यथार्थ स्वरूप नहीं होता है। उस प्रकार की आत्मा का यथार्थ स्वरूप का अनुभव होने पर सत्य होने पर भी संसार की निवृत्ति के अभाव से ब्रह्म का प्रयोजन भी कुछ नहीं होता है। इसलिए सन्दिग्धत्व सप्रयोजनत्व के अभाव से ब्रह्म का विचार नहीं करना चाहिए। यहाँ पर कहते हैं की प्रकृत लोगों का अहं इस प्रकार का अनुभव हो जाने पर श्रुतिप्रतिपाद्य-नित्यशुद्धबुद्धमुक्त संसार रहित आत्मतत्व भासित नहीं होता है। देह, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि आदि विषयों को उनके धर्मों का आत्मा में अध्यास्य होने पर ही मैं गोरा हूँ, मैं काला हूँ, मैं काना हूँ, मैं सन्दिग्ध हूँ, मैं निश्चित करता हूँ इस प्रकार का व्यवहार प्रवर्तित होता है। इसलिए साधारण जनों का आध्यासिक ही मैं अनुभव होता है। न केवल साधारण लोगों का अपितु पण्डितों का भी मैं यह अनुभव तथा उनके अनुयायियों के साथ लौकिक व्यवहार भी अध्यासपूर्व ही होता है। इसलिए जीवों के यथार्थ ब्रह्म स्वरूप के ज्ञान के अभाव से उसके ज्ञान के लाभ के लिए ब्रह्म ज्ञान आवश्यक हो जाता है। श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म के साक्षात्कार होने पर शुकवाम देवतादि आदि के जैसे मोक्ष निश्चित हो जाता है। इसलिए ब्रह्म के विचार का सप्रयोजनत्व सिद्ध होता है। इसलिए यह ब्रह्म सामान्य रूप से ज्ञात तथा विशेष रूप से अज्ञात होता है। जिस प्रकार से देह इन्द्रियादि में अध्यासवश देहेन्द्रियों की अभिन्नता से ब्रह्म सामान्य रूप से सभी के द्वारा जाना जाता है। लेकिन सभी प्रकार की उपाधियों से विनिर्मुक्त होने के कारण विशेषरूप से ब्रह्म का ज्ञान जीवों का नहीं होता है। इसलिए ब्रह्म का विचार करना चाहिए। अत: मण्डनमिश्र के द्वारा ब्रह्म की सिद्धि में यह कहा गया है

सर्वप्रत्ययवेद्ये वा ब्रह्मरूपे व्यवस्थिते
प्रपञ्चस्य प्रविलय: शब्देन प्रतिपाद्यते॥

(अर्थात् सभी प्रकार के विचारों को जान लेने पर ब्रह्म रूप में व्यवस्थित होने पर प्रपञ्च का प्रविलय होता है जो शब्द के द्वारा प्रतिपादित किया जाता है)

अध्यास के प्रतिपादन के बिना ब्रह्म के सन्दिग्धत्व तथा सप्रयोजनत्व का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है। तथा उसके द्वारा ब्रह्म का विचार भी नहीं किया जा सकता है। इसलिए उसके प्रतिपादन के लिए अध्यास का आलोचन अपेक्षित होता है।

उपनिषदों को आधार मानकर ही वेदान्तशास्त्रों की प्रवृत्ति कही गयी है। आचार्य शङ्कर के द्वारा जन्माद्यधिकरणभाष्य में कहा गया है कि- वेदान्तवाक्य-कुसुम-ग्रथनार्थत्वात् सूत्राणाम् इति। इस प्रकार से निषेध द्वारा ब्रह्म के प्रतिपादक उपनिषद के वाक्य हैं- नेह नानास्ति किञ्चन, अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्, अवाङ्मनसगोचरम्- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, सच्चिदानन्दं ब्रह्म। इत्यादि। यहाँ पर यह शङ्का होती है कि किस प्रकार से सर्वं खल्विदं ब्रह्म, इस प्रकार से ब्रह्म की व्यापकता सिद्ध होती है।

ध्यान दें:

इसलिए उपनिषद् वाक्यों में परस्पर विरोध होने से उनकी प्रमाण्यता सिद्ध नहीं होती है। अपास्तं च प्रामाण्यं तदाश्रितानां वेदान्तशास्त्राणाम्।

यहाँ पर कहते हैं कि, उपनिषद् वाक्यों का परस्पर विरोध नहीं है। अपितु निषेध वाक्यों के द्वारा भी ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन ही किया गया है। न ही ब्रह्मणि नानात्वमस्ति। न चानेन ब्रह्मण: सर्वव्यापकत्वविरोध:। सर्वव्यापकत्वं च ब्रह्मण: ब्रह्मणि आरोपितेषु अखिलेषु विषयेषु ब्रह्मण: अनुस्यूतत्वात्। (ब्रह्म में नानात्व नहीं होता है,इस वाक्य के द्वार यहाँ पर ब्रह्म के सर्वव्यापकत्व का विरोध होता है। क्योंकि ब्रह्म के सर्वव्याकपकत्व होने से ब्रह्म में आरोपित सभी विषय अनुस्यूतत्व के रूप से रहते हैं। इसलिए शङ्कराचर्य ने बृहदारण्यकोपनिषद् के भाष्य में कहा है- "दर्शनविषय में ब्रह्म में इससे नाना प्रकार का कुछ भी नहीं है, यह पूर्णतया सत्य है ब्रह्म में नानात्व नहीं होता है, नानात्व तो अविद्या के द्वारा ब्रह्म में अध्यारोपित किया जाता है। उस अध्यास के कारण से ही ब्रह्म में नानात्व की प्रतीति होती है। न की उसमें पारमार्थिक नानात्व होता है। इसलिए उपनिषद् वाक्यों की विरुद्ध प्रतिपादकता भी नहीं है। तथा उससे आश्रित वेदान्त ग्रन्थों में शङ्का भी नहीं होती है। इसलिए यह अध्यास अद्वैत वेदान्ततत्वालोचन के प्रसंग में महान्तगुरुत्व का वहन करता है।

'अध्यारोप तथा अपवाद के द्वारा निष्प्रपञ्च प्रपञ्चित होता है। इसलिए अद्वैत वेदान्त में उपदेश की प्रक्रिया दी गई है। अपवाद के अध्यारोपपूर्वकत्व से पहले अध्यारोप को प्रतिपादन करना चाहिए। उसके अध्यारोपितमिथ्याभूतविषयों का निषेध करना चाहिए। इसलिए वेदान्तसार की बालबोधिनीटीका में आपोदेव के द्वारा कहा गया है 'अपवाद के अध्यारोपपूर्वकत्व से पहले अध्यारोप का निरूपण किया जाता है। अद्वैतवेदान्त के विचारप्रसङ्ग में सबसे पहले अध्यारोपापर्याय के अध्यास का विचार करना चाहिए। इस प्रकार से अध्यास का प्रयोजन स्पष्ट होता है।

13.2) अध्यासपदार्थ

अधि उपसर्गपूर्वक दिवादिगणीय अस् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर अध्यास पद निष्पादित होता है। अधि इसका ऊपर अर्थ होता है। अस् धातु क्षेपण अर्थ में होती है। 'असु क्षेपणे' इस प्रकार से यह धातु पाठ में दी गई है। घञ् प्रत्यय भावार्थ तथा कर्मार्थ में होता है। एक वस्तु के ऊपर तथा अपर वस्तुओं के उपर भ्रमवश फेंकने पर क्षिप्त अपर वस्तु का व्युत्पत्ति के कारण अध्यास पद के द्वारा ग्रहण होता है। इसलिए भावार्थ में घञ् प्रत्यय से निष्पन्न अध्यास पद का अर्थ अध्यारोपण क्रिया होता है। कर्मवाच्य में घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न अध्यास पद का अध्यारोप वस्तु इस प्रकार से अर्थ होता है। जिस प्रकार से रस्सी में जो सर्प का ज्ञान होता है, वह भी अध्यास पद का वाच्य होता है। अर्थात् रस्सी में जिस सर्प का ज्ञान होता है वह सर्प भी अध्यास पद् के द्वार वाच्य होता है। इस प्रकार से प्रथम अध्यास का अर्थ ज्ञानाध्यास तथा द्वितीय अध्यास का अर्थ अभिधान होता है। इन दोनों का विचार आगे विधान किया जाएगा।

पाठगत प्रश्न 13.1

1. अद्वैतवेदान्त का प्रतिपाद्य विषय क्या है?
2. अद्वैतवेदान्तशास्त्र का प्रयोजन क्या है?
3. बन्धनों का मिथ्यात्व किस प्रकार से है?
4. किस प्रकार के विषय में विचार सम्भव होता है?

5. ब्रह्म का किस प्रकार का सन्दिग्धत्व होता है?

6. विधिमुख से ब्रह्म के लिए प्रतिपादित श्रुतियों के वचन कौन-से हैं?

7. निषेध मुख से ब्रह्म के लिए प्रतिपादित श्रुति के वचन कौन-से हैं?

8. अध्यास पद की व्युत्पत्ति क्या है?

9. अध्यास पद का व्युत्पत्तिगत अर्थ क्या है?

13.3) अध्यासलक्षण

ध्यान दें:

'लक्षण प्रमाण के द्वार वस्तु सिद्धि तो मात्र उद्देश्य मात्र है। इस प्रकार से शास्त्र का नियम है। किसी वस्तु के सिद्धि के लिए उसका लक्षण आवश्यक होता है तथा उसके लक्षण की सिद्धि के लिए वह लक्षण लक्ष्य में होना आवश्यक होता है, और वह लक्षण लक्ष्य में है अथवा नहीं इसके लिए प्रमाण आवश्यक होता है।

कुछ पूर्वपक्षी इस प्रकार से आक्षेप करते हैं की आत्म अहं इस प्रकार के प्रत्यय के रूप में भाषित होता है। तथा अनात्मा अहं भिन्न प्रत्यय में, अनात्मा विषयी होती है तथा आत्मा विषय होता है। इस प्रकार से अत्यन्त भिन्नता के कारण आत्मा में तथा अनात्मा में अध्यास सम्भव ही नहीं होता है। यदि आत्मा तथा अनात्मा में अध्यास स्वीकार नहीं करें तो परमात्म का जीवत्व किसी भी प्रकार से प्रतिपादित नहीं कर सकते हैं। तथा उससे बन्धन तथा मोक्ष का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों के प्रयोजन का निरूपण भी नहीं कर सकते हैं। इसलिए अध्यास का प्रतिपादन करने के लिए सर्वप्रथम अध्यास के लक्षण तथा उसके विषयक प्रमाणों का अलोचन करना चाहिए।

सदानन्द योगीन्द्र के द्वारा प्रणीत वेदान्तसार में प्रतिपादित अध्यास का लक्षण यह है कि- वस्तुनि अवस्त्वारोपः अध्यारोपः इति। अध्यास का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा है कि असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवत्। वस्तु में किस पदार्थ में उससे भिन्न अवस्तु पदार्थ का अरोप या अवभास ही अध्यारोप कहलाता है। उदाहरण की लक्षण सङ्गता इस प्रकार से है वस्तु रस्सी में अवस्तु रस्सी भिन्न सर्प का आरोप अध्यारोप कहालाता है। इसी प्रकार वस्तु सच्चिदानन्द ब्रह्म में अवस्तु वस्तुभिन्न ब्रह्मभिन्न अज्ञानादि जड़ पदार्थों का आरोप अवभास ही अध्यारोप इस प्रकार से सिद्ध होता है। यह अध्यास के लक्षण का स्वरूप होता है। इसलिए नृसिंहाचार्य ने पञ्चपदिकाविवरण की भावप्रकाशटीका में कहा है - 'परत्रावभास इत्यध्यासमात्रस्य स्वरूपलक्षणम्'

अद्वैत वेदान्त सम्मत अध्यास के इतर सम्मत अध्यास की विलक्षणता इस लक्षण के द्वारा स्फुट नहीं होती है। शङ्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में सर्वप्रथम अध्यास भाष्य लिखा है। वहाँ पर उनके द्वारा प्रतिपादित अध्यास के लक्षण से स्वविलक्षणमत का स्थापन तथा अपर के मत का खण्डन सम्भव होता है। शङ्काराचार्य के द्वारा किये गये अध्यास का लक्षण यह है कि स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः इति। पञ्चपदिका के विवरण में प्रकाशात्मयति के द्वारा ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यटीका पर भामतीटीका में वाचस्पति मिश्र ने इस लक्षण का विस्तार पूर्वक आलोचन किया है। उनके दोनों व्याख्यानों को अलग से सरल रूप में अभी प्रस्तुत किया जा रहा है। वाचस्पतिमिश्र के द्वारा लक्षण के व्याख्यान में यह विधान किया जा रहा है कि स्मृति का रूप ही रूप होता है जिसका वह स्मृति रूप कहलाता है। रूप स्वरूप को कहते हैं। स्मृति का स्वरूप असन्निहितविषयत्व कहलाता है। जब किसी वस्तु की स्मृति होती है वह वस्तु के समीप में नहीं रूकती है, लेकिन यहाँ पर इसका सद् वस्तु यह अर्थ होता है। यहाँ पर परत्र पद से

ध्यान दें:

आरोपित अधिष्ठान निर्दिष्ट है। पूर्व में दृष्ट का अवभास ही पूर्वदृष्टाभास कहलाता है। पहले देखा गया पूर्वदृष्ट कहलाता है। दृश धातु का भले ही दर्शन यह अर्थ होता है फिर भी इसका ज्ञान अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इसलिए पूर्वज्ञात का विषयीभूत अर्थ होता है। पूर्वदृष्टपद से आरोपणीय का उल्लेख किया गया है। अरोप मिथ्या होता है इसलिए पूर्वदृष्ट पद से मिथ्याभूत अनृत का ही निर्देश विहित है। भामतीकार ने अवभाव के दो प्रकार से अर्थ किये हैं। अवसन्नः अवमतो वा भासः अवभासः इति। भास अर्थात् अज्ञान और अवसाद अर्थात् उच्छेद है। ये उत्तर ज्ञान के द्वारा बाधित होते हैं। आवमान से तात्पर्य है यौक्तिक तिरस्कार ज्ञान का तिरस्कार ज्ञान की इच्छा प्रवृत्त्यादि कार्य सम्पादन में अक्षमता कहलाती है। इसी प्रकार उत्तर ज्ञान के द्वारा बाधित युक्ति से तिरस्कृत तथा ज्ञान अवभास पद का अर्थ होता है। उसके द्वारा पूर्वदृष्ट के तथा पूर्वज्ञात के अन्य स्थान पर उससे भिन्न सद् वस्तु में स्मृति रूप असन्निहित विषयक, अवभास बाधित तथा तिरस्कृत ज्ञान ही अध्यास कहलाता है। असन्निहितविषयक अवभास असन्निहित विषय का अवभास होता है। इसलिए असन्निहित पूर्व दृष्ट विषय का अन्य स्थान पर उससे भिन्न सद्वस्तु में जो अवभास होता है तथा जो बाधित होता है वह तिरस्कृत ज्ञान रूप में अध्यास का अर्थ होता है। पूर्वदृष्ट पद के द्वारा यह कहा गया है कि भ्रम में जो विषय भासित होता है अन्य स्थान पर सत्यभूत हो तो ऐसा भी नियम नहीं है, उस वस्तु के ज्ञान मात्र से ही अपेक्षित अध्यास का ज्ञान हो जाता है।

वाचस्पति मिश्र के मत में अवभास इससे ही अध्यास का संक्षिप्त लक्षण होता है। अवभास पद के द्वारा ही मिथ्याज्ञान कहा गया है। अवभास पद का अर्थ अवसन्न अथवा अवमतभास इस रूप में प्रतिपादित किया गया है। पूर्व दृष्ट इत्यादि पदों के द्वारा संक्षिप्त लक्षण का ही व्याख्यान तथा परिष्कार होता है।

यहाँ पर उदाहरण इस प्रकार से है- शुक्ति में रजत है इस प्रकार का ज्ञान होता है। दुकान पर पहले देखा गया रजत (चांदी) का रजतभिन्न अन्य स्थान शुक्ति में अवभास ही अध्यास होता है इस प्रकार से यह लक्षण समन्वय होता है। यह रजत है इस प्रकार से रजत के ज्ञान में अधिष्ठान शुक्ति के दर्शन से यह रजत नहीं है इस प्रकार का ज्ञान बाधित होता है।

लक्षण में स्मृतिरूप पद प्रत्यभिज्ञा में अतिव्याप्तवारण के लिए दिया गया है। प्रत्यभिज्ञा में विषय सन्निहित होता है। जिस प्रकार से काशी में देवदत्त को देखकर दिल्ली में देवदत्त को देखते हुए कोई कहता है की वह यह देवदत्त है। यह ज्ञान प्रत्यभिज्ञा कहलाता है। देवदत्त तब वक्ता का प्रत्यक्ष विषय होता है। इस प्रकार से अन्य स्थान पर प्रत्यक्ष विषय देवदत्त में पूर्वदृष्ट काशी में देखे हुए देवदत्त का जो भेद के द्वारा ज्ञान होता है वह भी अध्यास पद का वाच्य होता है। उसी प्रकार स्वमतीनाम की गाय में पहले देखे गये गोत्वधर्म का फिर बाद में देखी गई कालाक्षीनाम की गाय में जो यथार्थ अवभास होता है वह भी प्रत्यभिज्ञा रूप अध्यास होता है। लक्षण में स्मृतिरूप पद के प्रदान करने से यथार्थ ज्ञान रूप प्रत्यभिज्ञा में अतिव्याप्ति का प्रत्यिभिज्ञ में विषय के सन्नहित होने से निवारण हो जाता है। लक्षण में अन्य जगह पर उपादान पद के द्वारा यथार्थ ज्ञान में अतिव्याप्ति का निवारण किया गया है। रजत में रजत का ज्ञान यथार्थ ही होता है।

पञ्चपदी विवरण ग्रन्थ में प्रकाशात्मयति के द्वारा अध्यास का लक्षण व्याख्यापित किया गया है। उनके मत में स्मृति रूप पद का अर्थ स्मृति के रूप के समान जिसका रूप होता है वह, यह अर्थ है। स्मृति के स्वरूप का यहाँ पर कारणत्रयजन्यत्व है। यहाँ पर कारणात्रय दोष है तथा संस्कार सम्प्रयोग भी है। काल का व्यवधान होने से इन दोनों का योग होने पर ये दोष होते हैं, संस्कार पूर्वज्ञानजन्य होता है, सम्प्रयोग इन्द्रियसन्निकर्ष को कहते हैं। स्मृ धातु से भाव तथा कर्म में क्तिन् प्रत्यय करने पर स्मृतिपद की सिद्धि होती है। भाव में क्तिन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न स्मृतिपद का अर्थ स्मरण होता है। कर्म में क्तिन्

ध्यान दें:

प्रत्यय करने पर स्मर्यमाण वस्तु होता है। अन्य जगहों पर भी इस का यही अर्थ होता है। पूर्वदृष्ट का अवभास पूर्वदृष्टाभास कहलाता है। पूर्वदृष्ट पद का अर्थ पूर्वदृष्ट सजातीय ही होता है न की पूर्वदृष्ट वस्तु ही भ्रम स्थल में भासित होती है। अवभास पद की दो प्रकार से व्युत्तपत्ति कल्पित की गई है। वो है अवपूर्वक भासधातु से भाव तथा कर्म में घञ् प्रत्यय करने पर अवभास शब्द सिद्ध होता है। भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर अवभास शब्द का अर्थ ज्ञान होता है तथा कर्म में घञ प्रत्यय करने पर अवभास पद का अर्थ ज्ञानविषय होता है। इसलिए अन्य जगह पर पूर्वदृष्ट सजातीय का अन्य कारण त्रिजन्य जो अवभास होता है वह अध्यास कहलाता है, इस प्रकार से यह लक्षण का अर्थ है । प्रकाशात्मकयति के मत में परत्र अवभास इसके द्वारा ही अध्यास के लक्षण को सम्भव करते हैं। यहाँ पर परत्र इस कथन से पर का अवभास यह ही आक्षेप से सिद्ध होता है। इसलिए परत्र पर का अवभास ही अध्यास का लक्षण होने योग्य है। और उसके द्वारा दूसरी शुक्ति में पर रजत के अवभास अध्यास के रूप में सिद्ध होता है। पूर्व दृष्ट स्मृति रूप इत्यादि पद उस लक्षण की स्पष्टता के लिए ही जोड़े गये हैं।

पाठगत प्रश्न 13.2

1. वेदान्तसार में प्रतिपादित अध्यारोप का क्या लक्षण है?
2. शङ्कराचार्य के द्वारा प्रतिपादित अध्यास का क्या लक्षण है
3. भामतीकार के मतमें अध्यास का संक्षिप्त लक्षण क्या है?
4. भामती के मत में अवभास पद का क्या अर्थ है?
5. ज्ञान का अवसाद किसे कहते हैं?
6. ज्ञान का अवमान किसे कहते हैं?
7. भामती के मत में लक्षण स्थिति स्मृति रूप पद का क्या अर्थ है?
8. अध्यास लक्षण स्थित स्मृति रूप पद में कैसे अतिव्याप्ति का निवारण होता है तथा वहाँ पर क्या हेतु होता है?
9. विवरण के मत में अध्यास का क्या लघु लक्षण हो सकता है?
10. विवरण कार के मत में स्मृति का क्या स्वरूप है?

13.4) अध्यास के भेद

अध्यास ही अर्था ध्यास तथा ज्ञानाध्यास इस प्रकार से दो प्रकार का होता है। अध्यास काल में विषय का अध्यास होता है तथा ज्ञान का भी अध्यास होता है। शुक्ति में जिस प्रकार रजत का अध्यास होता है वैसे ही रजत ज्ञान का भी अध्यास सम्भव होता है। जब शुक्ति में रजत का अध्यास होता है तब वह अध्यास अर्था ध्यास कहलाता है और जब शुक्ति में रजत के ज्ञान का अध्यास होता है तब वह अध्यास ज्ञानाध्यास कहलाता है। विवरणकार के मत में अर्थाध्यास में तथा ज्ञानाध्यास में अध्यासलक्षण का समन्वय प्रदर्शित है जैसे परत्र शुक्ति में पूर्वदृष्ट के पूर्वदृष्टसजातीय रजत का स्मर्यमाणसदृश अवभासमान विषय का अध्यास के द्वारा ग्रहण से अर्थाध्यास में लक्षणसङ्गति होता है। लेकिन परत्र शुक्ति में पूर्वदृष्ट के पूर्वदृष्टसजातीय का स्मृतिरूप स्मरणसदृश जो अवभास ज्ञान होता है वह-वह अध्यास ही ज्ञानाध्यास होता

ध्यान दें:

है इस प्रकार से यहाँ पर लक्षणसङ्गति होती है। इसलिए प्रकाशात्मकयति के द्वारा पञ्चपदिका के विवरण में कहा गया है लक्षणसङ्गतिः। उक्तं च प्रकाशात्मयतिना पञ्चपादिकाविवरणे "यदा ज्ञानविशिष्टोऽर्थ एवाध्यासः, तदा स्मर्यमाणसदृशः अन्यात्मना अवभासमानः अन्यः अर्थः अध्यास इत्येवंलक्षणपरतया वाक्यं योजितम। यदा पुनरर्थविशिष्टं ज्ञानमेवाध्यासः, तदा स्मृतिसमानोऽन्यस्यान्यात्मनावभासः अध्यासः इत्येवंलक्षणपरतयापि तदेव वाक्यं योजयितुं शक्यते" "जब ज्ञानविशिष्ट अर्थ ही अध्यास होता है तब स्मर्यमाणसदृश अन्य आत्मा के द्वारा अवभासमान अन्य अर्थ अध्यास होता है। यह ही लक्षणपरता वाक्य में जोड़ी गई है। जब पुनरर्थविशिष्ट ज्ञान ही अध्यास होता है तब स्मृति समान अन्य की अन्य आत्मा के द्वारा अवभास अध्यास होता है। इस प्रकार से इस लक्षणपरता के द्वारा उस वाक्य को जोड़ा जा सकता है"

इस प्रकार से भामतीकार के मत मे भी अवभास पद की दो प्रकार से व्युत्पत्ति अङ्गीकार करके अर्थाध्यास में तथा ज्ञानाध्यास में अध्यास के लक्षण का समन्वय किया है।

यह अर्थाध्यास ही अर्थाध्यास,धर्म्याध्यास तथा धर्माध्यास इस प्रकार के सम्बन्ध से तीन प्रकार से विभाजित होता है। एक धर्म में अपर धर्मी का अध्यास ही धर्म्याध्यास होता है। जैसे धर्मी शुक्ति में अपर धर्म रजत का आरोप ही धर्म्याध्यास है। उसी प्रकार आत्मा में अन्तः करण का आरोप ही धर्म्याध्यास होता है। एक धर्म में अपरधर्मी के धर्म का अध्यास धर्माध्यास कहलाता है। जैसे धर्मी रज्जु में धर्मी सर्प के विषय युक्त धर्म का अध्यास ही धर्माध्यास है। जैसे आत्म धर्म चैतन्य का अध्यास ही धर्माध्यास है। उसी प्रकार आत्म धर्म चैतन्य के अन्तः करण में आरोप ही धर्माध्यास है। जब एक धर्मी में धर्म का आरोप नहीं होता है केवलसम्बन्धमात्र का आरोप होता है तब वह सम्बन्धाध्यास कहलाता है। जैसे आत्मा के साथ सम्बन्धहीन शरीर के आत्मा के साथ सम्बन्धमात्र आरोपित होता है। इसलिए उससे यह मेरा शरीर है इस प्रकार का भ्रमज्ञान हो जाता है।

अर्थाध्यास फिर तादात्म्याध्यास तथा संसर्गाध्यास के रूप में दो प्रकार का होता है ऐसा कुछ लोग कहते हैं। आत्मा में जब किसी अनात्मवस्तु के अभेद से आरोप होता है तब वह अनात्मवस्तु अभेद के कारण आरोप होती है तब वह तादात्म्याध्यास कहलाता है। स्वपरूपाध्यास इसका अपर नाम भी है। उसी प्रकार आत्मा में इन्द्रियों का अरोप होने पर में देखता हूँ, मैं सुनता हूँ, इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। जब आत्मा में अनात्मवस्तु न होकर केवल उसके संसर्ग का केवल आरोप होता है तब वह संसर्गाध्यास कहलाता है। उसी प्रकार जब आत्मा में पुत्रसंसर्ग का आरोप होता है तब मेरा पुत्र इस प्रकार का भ्रमज्ञान उत्पन्न होता है। यहाँ पर आत्मा में पुत्र का आरोप नहीं होता है, नहीं तो मैं पुत्र हूँ इस प्रकार का तादात्म्याध्यास हो जाए इसलिए यहाँ पर पुत्र के साथ आत्मा का अविद्यमान सम्बन्ध का केवल आरोप मात्र होता है। अहंकार के द्वारा तादात्म्यध्वास का तथा मम कार के द्वारा संसर्गाध्यास का निर्देश होता है। इस प्रकार से दोनों प्रकार के अध्यास को अङ्गीकार करके शङ्कराचार्य जी ने कहा है- यह मैं तथा मेरा यह इस प्रकार का नैसर्गिक यह लौकिक व्यवहार होता है।

सोपाधिक तथा निरूपाधिक भेद से अध्यास दो प्रकार को होता है। जिसमें अध्यास में कारण रूप से कोई उपाधि होती है वह सोपाधिक अध्यास कहलाता है। जैसे दो चन्द्रों के दर्शन के रूप में भ्रम होने पर अङ्गुलीव्यापार उपाधि होता है इसलिए यहाँ पर दो चन्द्रों का दर्शन सोपाधिक अभ्यास कहलाता है। अथवा जैसे एक ही ब्रह्म के अन्तः करण रूप उपाधियों के कारण से जीव को भ्रम हो जाता है। सोपाधिक अभ्यास मे अधिष्ठानज्ञानमात्र के द्वारा ही अध्यास की निवृत्ति नहीं होती है। उपाधिनाश से ही अध्यास की निवृत्ति होती है जिस अध्यास में कारणरूप से उपाधि नहीं होती है वह निरूपाधिक अध्यास कहलाता है। जैसे शुक्ति में रजत का ज्ञान। यह अध्यास शुक्तिरूपाधिष्ठान के दर्शन से बाधित होता है अध्यास का

ध्यान दें:

उदाहरण देते समय शङ्कराचार्य दोनो प्रकार के अध्यास के उदाहरण देते हैं ''जैस लोक में यह अनुभव है की शुक्ति ही रजत के समान भासित होती है उसी प्रकार एक ही चन्द्र दो के समान होता हैं"।

यह अध्यास ही सादि तथा अनादि भेद से फिर दो प्रकार का होता है। आत्मा में अविद्या का अध्यास अनादि है तथा अनादि काल से ही यह अध्यास विद्यमान है। चित् सुखाचार्य ने तत्त्वप्रदीपिका में छः प्रकार के अनादियों का अङ्गीकार किया है वे है जीव, ईश्वर, विशुद्ध चैतन्य, जीव तथा ईश्वर का भेद, अविद्या, अविद्या तथा चैतन्य का सम्बन्ध। इस प्रकार से कहा है-

जीव ईशो विशुद्धा चित् तथा जीवेशयोर्भिदा।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः॥ इति।

शुक्ति रज्जु आदि में रजत सर्पादि का अध्यास सादि है जिससे वे अध्यास उत्पन्न होते है। लेकिन दोनों प्रकार के भी अध्यास ज्ञान के उदय होने पर बाधित होते हैं।

पाठगत प्रश्न 13.3

1. अध्यास कितने प्रकार का होता है?
2. अर्थाध्यास कितने प्रकार का होता है?
3. ज्ञानाध्यास किसे कहते हैं?
4. अर्थाध्यास कितने प्रकार का होता है?
5. सम्बन्धाध्यास क्या है, तथा उसका उदाहरण क्या होता है?
6. धर्म्याध्यास क्या है, तथा उसका उदाहरण क्या होता है?
7. धर्माध्यास किसे कहते हैं तथा अध्यास कितने प्रकार के होते हैं?
8. उपाधि दृष्टि से अध्यास कितने प्रकार का होता है?
9. सोपाधिक अध्यास किसे कहते हैं तथा उसका उदाहरण क्या है?
10. निरूपाधिक अध्यास किसे कहते हैं?
11. सादिध्यास किसे कहते हैं?
12. अनादि अध्यास किसे कहते हैं?

13.5) लौकिक एवं शास्त्रीय व्यवहार का अध्यास

लौकिक तथा वैदिक प्रामाणिक व्यवहार अध्यास के कारण ही सम्भव होते हैं। विधि प्रतिषेध तथा मोक्षपरक शास्त्र अध्यास पूर्वक ही प्रवर्तित होते हैं। उसी प्रकार देह इन्द्रियादि में भी अहं का अभिमान होने पर निर्गुण असङ्ग आत्मा प्रमाता होता है। प्रमाता शरीर में अधिष्ठित होकर के इन्द्रियों के रूप में व्यापार करता है। उससे प्रत्यक्षादि ज्ञान उत्पन्न होते हैं। देहेन्द्रियादि में आत्मा के अध्यास के बिना आत्मा प्रमाता नहीं होता है। आत्मा प्रमाता नहीं होता है तो ज्ञान भी नहीं होता है। इसलिए सभी प्रमाण प्रमेय व्यवहार अध्यासपूर्वक ही सिद्ध होते हैं। पूर्वकाल से लेकर सभी जन अध्यास पूर्वक ही संसार में व्यवहार

ध्यान दें:

करते है। जिस प्रकार से संसार में गवादि पशु जब दण्डाधारी को आते हुए देखते है तब वे यह समझते है यह मुझे मारेगा और यह सोचकर के भाग जाते है। उसी प्रकार जिसके हाथ में हरी घास होती है उसके पास आ जाते हैं। उसी प्रकार विद्वान् लोग भी हिंसकदृष्टि तलवारधारी बलवान व्यक्ति को देखकर भाग जाते है तथा उसके विपरीत के प्रति आकर्षित होते हैं। इसलिए पशुआदि के द्वारा पुरुषों का प्रमाण प्रमेय व्यवहार काल में भेद नहीं देखा जाता है। पशुओं का यहाँ पर लोगो के प्रति जो व्यवहार है वह अध्यास पूर्वक ही है। शरीर में आत्मा ध्यास के बिना मैं मरता हूँ, यह बोध उत्पन्न ही नहीं होता है।

कर्मकाण्ड के अन्तर्गत अथवा ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत भी शास्त्र अध्यास को ही आश्रय लेकर प्रवर्तित होते हैं। इसलिए आत्मा में ब्राह्माणादि वर्णों का गृहस्थादि आश्रमों का, बालक युवादि व्यस्कों तथा व्याधिग्रस्तत्वादि अवस्थाओं का अध्यास करके ही ये शास्त्र प्रवर्तित होते हैं। वर्णों का अध्यास जैसे ब्राह्मण यज्ञ करे, आश्रम का अध्यास जैसे गृहस्थ को उसी प्रकार की भार्या प्राप्त हो,आयु का अध्यास आठ वर्ष के बालक का उपनयन करें। अवस्था अध्यास जैसे अप्रितसमाधेय व्याधियों के नाश के लिए जलादि में प्रवेश करके प्राणत्याग करना चाहिए। भलेही कर्मकाण्ड में देह से अतिरिक्त आत्मा भी अङ्गीकार की गई है। फिर भी उपनिषदों में प्रतिपादित नित्यशुद्बुद्धमुक्तस्वभाव अत्मा वहाँ विधि का विषय नहीं होती है। ज्ञानकाण्ड में आध्यासिक जीवत्व को स्वीकार करने पर जीव के बन्ध आदि विषय अध्यास कारण से ही सिद्ध होते हैं। इसलिए सभी लौकिक व्यवहार तथा सभी शास्त्र अविद्यापूर्वक ही प्रवृत्त होते हैं। प्रत्यगात्मा में देहान्तकरणादि अनात्मनों को अध्यास के साथ ही लोकव्यवहार सम्भव होता है। इसलिए आत्मा में बाह्य धर्मों के अध्यास करके पुत्र के नष्ट होने पर में भी नष्ट हो जाऊँगा, इस प्रकार से जीव मानता है। उसी प्रकार शरीर धर्मों का आत्मा में अध्यास करके मैं मोटा हूँ, मैं गौरा हूँ, मैं जाता हूँ, मैं उल्लङ्घन करता हूँ, इन्द्रियों के धर्मों का आत्मा में अध्यास करके मैं गूँगा हूँ, मैं काना हूँ . मैं बहरा हूँ, मैं अन्धा हूँ, और अन्त: करण के धर्मों का आत्मा में अध्यास करके मैं चाहता हूँ, मैं सङ्कल्प करता हूँ,इस प्रकार के व्यवहार संसार में दिखाई देते हैं। आत्मा में अनात्माओं का अध्यास ही सभी प्रकार के अनर्थों का हेतु है न की शक्तिरजतादि का भ्रम। इसलिए सभी अनर्थ के हेतु अध्यास के दूर करने के लिए सभी उपनिषद् प्रवृत्त हैं, तथा उनके अनुयायी वेदान्तशास्त्र प्रवृत्त है।

पाठगत प्रश्न 13.4

1. किस प्रकार से निर्गुण असङ्ग आत्मा का प्रमाता होता है?
2. शास्त्रों का आध्यासिकत्व किस प्रकार से है?
3. वर्णाध्यास उपेत विधिवाक्य कौन-सा है?
4. आश्रम अध्यासयुक्त शास्त्र वाक्य का उदाहरण क्या है?
5. अन्त: करण के धर्मों को आत्मा में आरोपित करके किस प्रकार के व्यवहार होते हैं।
6. सभी अनर्थों का हेतु क्या है?

पाठ सार

वेदान्तशास्त्र के जीवब्रह्मैक्य के विषय का मोक्ष रूप प्रयोजन की सिद्धि के लिए अध्यास का आलोचन अपेक्षित है जीवत्व ही ब्रह्म के अध्यास का कारण होता है। इसलिए जीव तथा ब्रह्म का भेद

ध्यान दें:

मिथ्या होता है। जीव तथा ब्रह्म का वास्तविक भेद तो होता ही नहीं है। इसी प्रकार ब्रह्म में कर्तृत्व तथा भोक्तृत्वादि बन्धन अध्यास के कारण से ही कल्पित होता है। इसलिए मिथ्याभूत बन्ध ब्रह्म ज्ञान होने पर नष्ट हो जाता है यह सिद्ध होता है। इस प्रकार से अध्यास के कारण से अद्वैतवेदान्त के विषय प्रयोजन की सिद्धि होती है। अधि उपसर्ग पूर्वक दिवाणि गण की अस् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर अध्यास शब्द सिद्ध होता है। घञ् प्रत्यय दो अर्थों में होता है। भाव तथा कर्म। जब जब भाव अर्थ में होगा तब यहाँ पर भाव अर्थ में अध्यास पद का अर्थ होता है। आरोप क्रिया तथा घञ् प्रत्यय के कर्म अर्थ में होने पर अध्यास पद का अर्थ 'आरोपितपदार्थ' यह अर्थ होता है।

अध्यास के लक्षण शंकराचार्य के द्वारा स्मृतिरूप, तथा अन्य जगहों पर पूर्वदृष्टाभास होता है। भामतीकार इस प्रकार से अध्यास के लक्षण को सम्भव रूप में मानते है, अवसन्न तथा अवमत जो भाग होता है वह अवभास कहलाता है, यह उसकी व्याख्या है। स्मृतिरूप पद का असन्निहित विषय यह अर्थ होता है। इस पद के द्वारा प्रत्यभिज्ञा में अतिव्याप्ति का निवारण हो जाता है। परत्र पद के द्वारा यथार्थज्ञान होने पर अतिव्याप्ति का निवारण हो जाता है। पूर्वदृष्टपद के द्वारा अरोपणीय उल्लेख से उसका मित्थ्यातत्व जाना जाता है। विवरणकार के मत में ही परत्रावभास यही लक्षण अध्यास के स्पष्टार्थ के रूप में किये गये है। वहाँ पर स्मृतिरूप शब्द का स्मर्यमाणसदृश इस प्रकार का अर्थ किया गया है। तथा परत्र पद का स्वभिन्न अर्थ है और पूर्वदृष्टपद का पूर्वदृष्ट सजातीय अर्थ है। अवभास पद का ज्ञान तथा ज्ञेय अर्थ होता है। यह ही अध्यास ज्ञानाध्यास तथा अर्थाध्यास के रूप में दो प्रकार का होता है। इसलिए दूसरी जगह पर शुक्ति में पूर्वदृष्ट का पूर्वदृष्टसजातीय रजत के स्मर्यमाणसदृश अवभासमान के विषय का अध्यास पद के द्वारा ग्रहण होने से अर्थाध्यास में लक्षण की सङ्गति होती है। धर्म्यध्यास धर्माध्यास तथा सम्बन्धाध्यास इस प्रकार से तीन प्रकार के अर्थाध्यास विभाजित होते हैं। अर्थाध्यास फिर तादात्म्याध्यास तथा संसर्गाध्यास के रूप में दो प्रकार होता है ऐसा कुछ लोग कहते हैं। सोपानाधिकरण के रूप में भेदनाध्यास भी फिर दो प्रकार का होता है। साद्य तथा अनादिभेद के द्वारा भी अध्यास के दो प्रकारों की विद्वानों ने कल्पना की है।

सभी प्रकार के लौकिक तथा वैदिक व्यवहार अध्यास के कारण ही सम्भव होते हैं। उसी प्रकार देह तथा इन्द्रियादि में ब्रह्म के अध्यास होने पर ब्रह्म का प्रमातृत्व सिद्ध होता है। ब्रह्म के प्रमातृत्व सिद्ध होने पर प्रमाणप्रवृत्ति होती है। उससे ज्ञान सम्भव होता है। इसलिए सभी प्रकार का लौकिक व्यवहार अध्यास के कारण से ही होता है। पण्डितों का मूर्खों का, पशुओं का तथा सभी का प्रमाण प्रमेय पूर्वक लौकिक व्यवहार अध्यास के कारण से ही होता है। शास्त्रीय व्यवहार भी ब्रह्म मे वर्णाश्रम व्यावस्था आदि विशेष के साध्य से आश्रित होकर ही प्रवर्तित होता है। इसलिए लौकिक तथा वैदिक व्यवहारों का आध्यासिकत्व होता है।

आपने क्या सीखा

- अद्वैत वेदान्त में अध्यास के आलोचन में प्रयोजन को जाना।
- अध्यासपद का व्युत्पात्तिलभ्य अर्थ को जाना।
- अध्यास का लक्षण तथा अध्यास लक्षण विचार को जाना।
- लौकिक तथा शास्त्रीय व्यवहारों को आध्यासिकता को जाना।

पाठ-13

अध्यास लक्षण विचार

ध्यान दें:

पाठांत प्रश्न

1. चार पुरुषार्थ कौन-कौन से होते हैं?
2. अद्वैतवेदान्त के प्रतिपाद्यविषयों का सार क्या है?
3. ब्रह्म का शुद्धत्व किस प्रकार से है?
4. ब्रह्म का आनन्दस्वरूप किस प्रकार से है?
5. मुक्ति किसे कहते हैं?
6. बन्ध के मिथ्यात्व की प्रतिपादिका श्रुतियाँ कौन-कौन सी है?
7. असत् किस कहते हैं तथा उसका उदाहरण क्या है?
8. ब्रह्म में नानात्व प्रतीति का क्या हेतु है?
9. छः अनादि कौन-कौन से हैं?
10. वय के अध्यास का उदाहरण क्या है?
11. अवस्थाध्यास का उदाहरण क्या है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 13.1

1. अद्वैत वेदान्त का प्रतिपाद्यविषय ही जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य है।
2. अद्वैत वेदान्त शास्त्र के प्रयोजन का विषय मोक्ष है।
3. ब्रह्म में आरोपितत्व जीव के स्वरूप का ज्ञान होने पर बन्धनों की निवृत्ति को मिथ्यात्व कहते हैं।
4. सन्दिग्ध के सप्रयोजन होने पर ही विषय में विचार सम्भव होता है।
5. देहेन्द्रियादि की अभिन्नतया के द्वारा ब्रह्म का सामान्य ज्ञान होता है। लेकिन सर्वोपाधि विनिर्मुक्तता से द्वारा ब्रह्म का विशेषज्ञान जीवों को नहीं होता है। इसलिए ब्रह्म का सन्दिग्धत्व होता है।
6. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, सच्चिदानन्दं ब्रह्म इस प्रकार से उपनिषद् वाक्य है।
7. नेह नानास्ति किञ्चन,अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्,अवाङ्मनसगोचरम् इत्यादि श्रुतियों के निषेध मुख के द्वारा ब्रह्म का प्रतिपादन करते है।
8. अधिपूर्वक दिवादिगण की अस् धातु से भाव अर्थ में तथा कर्म अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर अध्यास पद निष्पादित होता है।
9. भावव्युत्पत्ति के द्वारा अध्यासपद की आरोपक्रिया यह अर्थ है। कर्मव्युत्पत्ति से अध्यास पद की आरोपित वस्तु होती है।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 13.2

1. असर्पभूत रस्सी में सर्प के आरोप के जैसे वस्तुओं में अवस्तु का आरोप ही अध्यारोप होता है।
2. स्मृतिरूप परत्र पूर्वदृष्टाभास इस प्रकार से .
3. अवभास यह भामतीकार के मत में अध्यास का संक्षिप्त लक्षण है।
4. अवसन्न अवमत जो भास होता है वह अवभास कहलाता है।
5. ज्ञान के अवसाद का नाम ज्ञान उच्छेद तथा उत्तरज्ञान का बाध्यत्व होता है।
6. ज्ञान का अवमान यौक्तिक तिरस्कार कहलाता है। इच्छाप्रवृत्यादिकार्य सम्पादन में अक्षमता तथा ज्ञान का तिरस्कार है।
7. असन्निहित विषय यह अर्थ है।
8. प्रत्यभिज्ञा में विषय के सन्निहत होने से अतिव्याप्ति का निवारण होता है।
9. विवरणमत में परत्र अवभास होना यही अध्यास का लघु लक्षण होता है।
10. दोष का संस्कार सम्प्रयोग होता है तथा कारणत्रितय जन्यत्व स्मृति का स्वरूप होता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 13.3

1. अध्यास दो प्रकार का होता है अर्थाध्यास तथा ज्ञानाध्यास।
2. अधिष्ठान में आरोपित वस्तु का अर्थाध्यास होता है। जैस शुक्ति में रजत का अध्यास ही अर्थाध्यास है।
3. अधिष्ठान में आरोपित वस्तु के ज्ञान का अध्यास ही ज्ञानाध्यास है। जैस शुक्ति में रजत के ज्ञान का अध्यास।
4. धर्म्यध्यास धर्म्याध्यास सम्बन्धाध्यास इस प्रकार से अर्थाध्यास तीन प्रकार का होता है। तादात्म्याध्यास संसर्गाध्यास इस प्रकार से अर्थाध्यास दो प्रकार का होता है ऐसा कुछ लोग कहते हैं।
5. एक धर्म में ही सम्बन्धमात्र का आरोप ही सम्बन्धाध्यास होता है। जैस आत्मा में सम्बन्ध हीन शरीर के सम्बन्ध अध्यास होकर के होता है और हम मेरा शरीर यह प्रयोग करते है।
6. एक धर्म में अपरधर्मी का अध्यास ही धर्म्यध्यास होता है। जैस शुक्ति में रजत का अध्यास।
7. एक धर्म में अपर धर्मी के धर्म का अध्यास ही धर्माध्यास है। जैस रस्सी में धर्मी सर्प के विषयुक्तत्व धर्म का अध्यास ही धर्माध्यास कहलाता है।
8. उपाधिदृष्टि से अध्यास दो प्रकार का होता है। सोपाधिक तथा निरूपाधिक।
9. जिस अध्यास में कारणरूप से कोई उपाधि होती है। सोपाधिक अभ्यास कहलाता है। जैसे दो चन्द्रों का दर्शन सोपाधिक अभ्यास है। अङ्गुली आदि का व्यापार वहाँ पर उपाधि होती है।
10. सोपाधिक अभ्यास न केवल अधिष्ठानज्ञान मात्र के द्वार निवर्तित होता है अपितु उपाधि नाश के द्वारा यहाँ पर ज्ञान का भी नाश होता है।

ध्यान दें:

11. जिस अध्यास में कारण रूप से कोई उपाधि नहीं होती है वह निरूपाधिक अध्यास कहलाता है। जैस शुक्ति में रजत का ज्ञान।

12. जिस अध्यास की उत्पत्ति का निरूपण किया जात सकता है वह सादिध्यास कहलाता है। जैसे शुक्ति में रजत का अध्यास वह सादि अध्यास है।

13. जिस अध्यास के आदि का निरूपण नहीं किया जा सकता है वह अनादि अध्यास होता है। जैसे आत्मा में अविद्या का अध्यास वह अनादि है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 13.4

1. देहेन्द्रियादि में अहं के अभिमान में सत्य ही असङ्ग आत्मा तथा प्रमाता होता है।

2. आत्मा में वर्णाश्रम, वय, अवस्था आदि विशेष अध्यास के आश्रित होने से ही शास्त्रों की प्रवृत्ति दर्शन से शास्त्रों का आध्यासिकत्व होता है।

3. ब्रह्मणो यजेत, राजा राजसूयेन यजेत इत्यादि।

4. गृहस्थ को सदृश भार्या का ही लाभ प्राप्त हो, इस प्रकार से।

5. मैं कामना करता हूँ। मैं सङ्कल्प करता हूँ, इस प्रकार से।

6. आत्मा में अनात्मा का अध्यास ही सभी अनर्थों का हेतु है।